साहित्य–संस्कृति

हाशिए पर धकेले गये लोगों को जोड़ने वाला रेडियो

कवि शहंशाह आलम

समकालीन कविता के महत्वपूर्ण कवि अरविंद श्रीवास्तव से मुलाकात और बातचीत इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण है कि अभी 19 अक्तूबर को बर्लिन स्थित प्रसारण भवन 'फंखाउस में भारत-जर्मन मित्रता और रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल का भारत से रिश्तों पर बनी फिल्म 'द साउंड ऑफ फ्रेंडशिप: वार्म वेवलेंथ इन ए कोल्ड, कोल्ड वॉर' की स्क्रिनिंग हुई. यह फिल्म अरविन्द श्रीवास्तव के अस्सी के दशक के कार्यकलापों पर केंद्रित है. कहा जाए तो वे इस फिल्म के मुख्य किरदार ही नहीं, फिल्म की धड़कन भी हैं. समकालीन कविता व लेखन इनकी मुख्य विधा रही है.

पेश है कवि शहंशाह आलम की अरविंद श्रीवास्तव से बातचीत के प्रमुख अंश...

प्र. आप मूलतः कवि व साहित्यकार हैं, अपनी साहित्यिक यात्रा के साथ इस फिल्म को कैसे जोड़ते हैं

बेशक, साहित्य में कविता लेखन ही मेरी मुख्य विधा रही है, अस्सी के दशक में लघु पत्रिकाओं का जबरदस्त प्रभाव था. जनमानस पर साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियां हमारे सामाजिक जीवन का हिस्सा थीं. संचार व सूचना संप्रेषण के संसाधन सीमित थे. टीवी व इंटरनेट-सोशल मीडिया से हम अपरिचित थे, ऐसे में प्रिंट पत्रिका व अखबार ही हमारे सशक्त औजार थे, जिसकी धार 1990 तक स्पष्ट रूप से दिखी. सोवियत और पूर्वी यूरोप से साम्यवादी व्यवस्था के खात्मे ने जो वैचारिक शून्यता छोड़ी उसकी भरपाई पुनः नहीं हो सकी. उन्हीं दिनों मेरी पहली कविता 'सम्भवा' नामक पत्रिका में आयी थी. पटना से प्रकाशित दैनिक प्रभात खबर सहित अन्य अखबारों आदि में प्रकाशित कविताओं ने मुझे कम से कम बिहार के कवियों में शुमार तो कर ही लिया. लेखन के आरंभिक दौर में अंतरराष्ट्रीय प्रसारण केंद्रों का बतौर श्रोता रहा. फिर उनके कार्यक्रमों में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया. इनमें रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल सबसे ऊपर रहा. आज पैंतीस वर्षों के बाद जर्मनी में शोध का हिस्सा मैं बन पाया! एक श्रोता का इस मुकाम तक पहुंच पाना वाकई अविस्मरणीय है.

प्र. जर्मनी में आपकी रचनात्मकता और कार्यकलापों पर 'द साउंड ऑफ फ्रेंडशिप.. का निर्माण हुआ, यह कैसे संभव हो सका?

सत्तर-अस्सी का दशक विश्व इतिहास में महाशक्तियों के बीच चले 'कोल्डवार' की वजह से भूला नहीं जा सकता है. उन दिनों दुनिया दो ध्रुवों में बटी थी, पूर्वी खेमे का नेतृत्व सोवियत संघ करता था, जिसमें कहीं न कहीं भारत की भी असरदार भूमिका थी. 1989 में जब कई वजहों से सोवियत व्यवस्था चरमरायी और साम्यवादी खेमा ने पूर्वी यूरोप से अपनी छतरी समेटना आरम्भ किया, तब भारत सरीखे राष्ट्रों के विचारक और बुद्धिजीवी भौंचक रह गये! जर्मन जनवादी गणतंत्र और रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल के साथ हमारे रिश्तों पर बनने वाली फिल्म उन्हीं दिनों की यादें हैं, जब जर्मनी स्थित प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हैम्बलट के राजनीति के प्रध्यापक आनंदिता बाजपेयी ने शोध के क्रम में मेरी तलाश की व संपर्क स्थापित किया, हमारी पहली मुलाकात पटना में हुई, फिर यह सिलसिला मधेपुरा स्थित मेरे आवास 'कला कुटीर' में आ कर सात दिनों के फिल्म की शूटिंग तक जारी रहा.

प्र. आपने ऐसा क्या किया कि रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल के प्रिय पात्र बने?

फिल्म इस अर्थ में भी ऐतिहासिक है कि भारत और जर्मन जनवादी गणतंत्र व रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल के साथ 'मधेपुरा' जैसे कस्बाई शहर का संबंध, जब संचार के माध्यम सीमित थे, इंटरनेट का नामोनिशान नहीं था. पत्र के माध्यम से दुनिया जुड़ी थी और डाकघर अपने अहम भूमिका में थे. एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र संवाद का संचार अनवरत जारी रहे, इसके लिए हमारी सक्रियता व तत्परता ही हमारे मूल में रही. उक्त फिल्म में केंद्रीय भूमिका निभाने का मौका मेरे जुनून की वजह से मुझे मिल पाया. यह फ़िल्म भारत- जर्मन जनवादी गणतंत्र खासकर रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल से हमारे रिश्तों पर आधारित पहली फिल्म है!

प्र. आपकी राजनीति और विश्वदृष्टि को आकार देने में रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल और उसके मॉडरेटर आपके लिए कितने महत्वपूर्ण और प्रभावशाली थे?

सच कहूं तो मेरी वैश्विक दृष्टि को रोशनी देने का काम आरबीआइ (रेडियो बर्लिन इंटरनेशनल) ने किया है. अस्सी के दशक में मैं व मेरे अधिकांश मित्र स्नातक अथवा स्नातकोत्तर के छात्र थे. सूचना तकनीक के उस दौर में रेडियो ही एक सशक्त माध्यम था, इंटरनेट का हमने नाम भी नहीं सुना था. स्पष्ट है जब दुनिया दो खेमों में बंटी थी. स्वभाव से हमारा देश भी सोवियत विचारधारा के बेहद करीब था. आरबीआइ के प्रसारण हाशिए पर धकेले गये लोगों की आवाज थी, नयी भाषा के साथ नित्य नये घटनाक्रम का विश्लेषण बहुत ही रोचक व सहज अंदाज में प्रस्तुत करना आरबीआइ के उद्घोषकों एवं कार्यक्रम मॉडरेटर की काबिलियत को दर्शाता रहा.